प्रेमचंद के चयनित उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण का सामाजिक यथार्थ

नीलम वर्मा[1], डॉ. विकास आर्य[2]
[1]पीएच.डी, हिन्दी विभाग
[2]सहायक प्राध्यापक
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय)

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.18667256

शोध सारांश

प्रेमचंद के उपन्यास हिंदी साहित्य में भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनके साहित्य का केंद्र किसान, श्रमिक और मध्यवर्गीय समाज है, जो औपनिवेशिक शासन, जमींदारी व्यवस्था और पूँजीवादी दबावों के कारण निरंतर आर्थिक शोषण का शिकार रहा। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य प्रेमचंद के चयनित उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण के स्वरूप का विश्लेषण करना तथा उनके सामाजिक निहितार्थों को स्पष्ट करना है।

इस अध्ययन में विश्लेषणात्मक और समाजशास्त्रीय पद्धति को आधार बनाया गया है। 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' और 'गबन' जैसे उपन्यासों के माध्यम से किसान, श्रमिक और मध्यवर्ग की आर्थिक स्थितियों, शोषण की प्रक्रियाओं तथा वर्गीय असमानताओं का परीक्षण किया गया है। शोध यह दर्शाता है कि प्रेमचंद आर्थिक शोषण को व्यक्तिगत नैतिक विफलता नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की संरचनात्मक समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

अध्ययन के निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि प्रेमचंद द्वारा चित्रित वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण आज भी विभिन्न रूपों में समाज में विद्यमान हैं। इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यास सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को समझने के लिए न केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं, बल्कि समकालीन समाज के संदर्भ में भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

2. मुख्य शब्द

प्रेमचंद, वर्ग-संघर्ष, आर्थिक शोषण, किसान-जीवन, श्रमिक वर्ग, हिंदी उपन्यास

भूमिका

प्रेमचंद के उपन्यास भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनका साहित्य उस युग की उपज है, जब औपनिवेशिक शासन, जमींदारी व्यवस्था और उभरती हुई पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित कर रही थीं। इस समय समाज तीव्र वर्ग-

विभाजन की प्रक्रिया से गुजर रहा था, जिसमें एक ओर शोषक वर्ग सशक्त होता जा रहा था और दूसरी ओर किसान, श्रमिक तथा निम्न मध्यवर्ग निरंतर आर्थिक संकट से जूझ रहा था। प्रेमचंद ने इन परिस्थितियों को अपने उपन्यासों में जीवन के अनुभवों के आधार पर प्रस्तुत किया, जिससे उनका साहित्य सामाजिक यथार्थ का विश्वसनीय दस्तावेज बन सका।

प्रेमचंद की यथार्थवादी साहित्यिक दृष्टि उनके समय की सामाजिक असमानताओं को केंद्र में रखती है। उन्होंने वर्ग-संघर्ष को किसी वैचारिक सिद्धांत के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की व्यावहारिक सच्चाई के रूप में चित्रित किया। उनके उपन्यासों में किसान ऋण-प्रथा, जमींदारी शोषण और प्राकृतिक विपत्तियों से ग्रस्त दिखाई देता है, श्रमिक श्रम और पूँजी के असंतुलन का शिकार है, जबकि मध्यवर्ग आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा के दबाव में संघर्षरत है। यह वर्गीय विभाजन समाज के नैतिक और मानवीय मूल्यों को भी प्रभावित करता है।

प्रेमचंद के साहित्य में आर्थिक शोषण केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय का व्यापक रूप है। वे शोषण को व्यक्ति की नैतिक दुर्बलता से जोड़ने के स्थान पर सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की विफलता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसी दृष्टि से उनके उपन्यास वर्ग-संघर्ष की वास्तविक प्रकृति को उजागर करते हैं। इस संदर्भ में प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक महत्व रखता है, बल्कि वर्तमान सामाजिक संदर्भों में भी शोध-समस्या के रूप में विशेष प्रासंगिकता प्राप्त करता है।

4. शोध-समस्या और उद्देश्य

4.1 शोध-समस्या

प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण भारतीय समाज की मूलभूत संरचनात्मक समस्याओं के रूप में उभरते हैं। उनका साहित्य उस सामाजिक व्यवस्था को उजागर करता है, जिसमें आर्थिक संसाधनों पर सीमित वर्ग का अधिकार स्थापित है और बहुसंख्यक समाज शोषण, ऋण और असुरक्षा के दुष्चक्र में फँसा हुआ है। प्रेमचंद ने किसान, श्रमिक और निम्न मध्यवर्ग के जीवन के माध्यम से यह दिखाया है कि आर्थिक असमानता केवल धन के वितरण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह सामाजिक सम्मान, नैतिकता और मानवीय संबंधों को भी प्रभावित करती है।

शोध-समस्या इस तथ्य से संबंधित है कि प्रेमचंद ने वर्ग-संघर्ष को किन सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में प्रस्तुत किया है तथा आर्थिक शोषण की प्रक्रियाएँ उनके उपन्यासों में किस प्रकार कार्य करती हैं। साथ ही यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि प्रेमचंद द्वारा चित्रित यह सामाजिक यथार्थ भारतीय समाज की किन गहरी संरचनात्मक विफलताओं को उजागर करता है। इस प्रकार शोध का केंद्रीय उद्देश्य प्रेमचंद के उपन्यासों

में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण की प्रकृति को समझना और उसका आलोचनात्मक विश्लेषण करना है।

4.2 शोध-उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. प्रेमचंद के चयनित उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की प्रकृति और उसके सामाजिक स्वरूप का विश्लेषण करना।
2. जमींदारी व्यवस्था, ऋण-प्रथा, पूँजीवादी दबाव और सामाजिक असमानताओं के संदर्भ में आर्थिक शोषण के विभिन्न रूपों की पहचान करना।
3. किसान, श्रमिक और निम्नवर्ग की सामाजिक स्थिति, उनके जीवन-संघर्ष और आर्थिक विवशताओं का अध्ययन करना।
4. प्रेमचंद के सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए यह स्पष्ट करना कि वे आर्थिक शोषण को सामाजिक व्यवस्था की विफलता के रूप में किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

5. शोध-पद्धति

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण के सामाजिक यथार्थ के अध्ययन हेतु समन्वित शोध-पद्धति को अपनाया गया है। अध्ययन का आधार विश्लेषणात्मक पद्धति है, जिसके अंतर्गत चयनित उपन्यासों के कथानक, पात्रों और सामाजिक-आर्थिक संदर्भों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। इस पद्धति के माध्यम से वर्गीय असमानताओं, शोषण की प्रक्रियाओं और उनके सामाजिक प्रभावों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अंतर्गत प्रेमचंद के उपन्यासों को तत्कालीन भारतीय समाज की सामाजिक संरचना, जमींदारी व्यवस्था, ऋण-प्रथा और औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के संदर्भ में देखा गया है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि आर्थिक शोषण केवल साहित्यिक कल्पना नहीं, बल्कि समाज की वास्तविक समस्या थी, जो विभिन्न वर्गों के जीवन को प्रभावित कर रही थी।

तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति अपनाते हुए विभिन्न उपन्यासों में चित्रित किसान, श्रमिक और मध्यवर्गीय पात्रों की स्थितियों की तुलना की गई है। इससे यह स्पष्ट किया गया है कि वर्ग-संघर्ष के रूप और तीव्रता सामाजिक परिवेश के अनुसार कैसे बदलते हैं।

शोध में प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रेमचंद के चयनित उपन्यासों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में प्रेमचंद पर केंद्रित आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध-लेख और सामाजिक-आर्थिक अध्ययन शामिल हैं। इन स्रोतों के संतुलित प्रयोग से विषय का तथ्यपरक और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

6. प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण

प्रेमचंद के उपन्यास भारतीय समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण की संरचनात्मक वास्तविकताओं को गहराई से उजागर करते हैं। उनका साहित्य किसान, श्रमिक और मध्यवर्ग के जीवन अनुभवों को केंद्र में रखकर उस सामाजिक व्यवस्था की आलोचना करता है, जिसमें आर्थिक संसाधनों का असमान वितरण और सत्ता का केंद्रीकरण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्रेमचंद के यहाँ वर्ग-संघर्ष किसी वैचारिक नारे के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की दैनिक सच्चाइयों के रूप में उपस्थित है, जहाँ शोषण मानवीय संबंधों को भी प्रभावित करता है।

6.1 'गोदान' में किसान वर्ग और आर्थिक शोषण

'गोदान' प्रेमचंद का प्रतिनिधि उपन्यास है, जिसमें भारतीय किसान के जीवन की आर्थिक त्रासदी का व्यापक चित्रण मिलता है। होरी जैसे पात्र जमींदारी व्यवस्था, ऋण-प्रथा और सामाजिक दबावों के कारण निरंतर शोषण का शिकार बनते हैं। किसान की मेहनत का प्रतिफल उसे नहीं मिलता, बल्कि साहूकार, जमींदार और प्रशासनिक व्यवस्था उसका लाभ उठाती है।

जमींदारी व्यवस्था किसान को भूमि का स्वामी नहीं, बल्कि श्रमिक बना देती है। ऋण-प्रथा इस शोषण को और गहरा करती है, जिससे किसान आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित रह जाता है। प्रेमचंद इस स्थिति को व्यक्तिगत दुर्भाग्य नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की विफलता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। किसान की विवशता वर्ग-संघर्ष का वह रूप है, जिसमें प्रतिरोध की संभावना सीमित, पर पीड़ा अत्यंत गहन होती है।

6.2 'कर्मभूमि' में श्रमिक वर्ग और वर्ग-संघर्ष

'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने श्रमिक वर्ग के संघर्ष को सामाजिक अन्याय और राजनीतिक चेतना के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। यहाँ श्रम और पूँजी के बीच टकराव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। श्रमिक का श्रम पूँजीपति के लाभ का साधन बन जाता है, जबकि उसकी स्वयं की जीवन-स्थितियाँ असुरक्षित बनी रहती हैं।

प्रेमचंद श्रमिक वर्ग को केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की संभावना के रूप में भी देखते हैं। उपन्यास में वर्ग-संघर्ष केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक प्रश्न के रूप में उभरता है। श्रमिकों की चेतना सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का आधार बनती है, जिससे वर्ग-संघर्ष का सक्रिय स्वरूप सामने आता है।

6.3 'रंगभूमि' में पूँजीवादी शोषण और मानव-मूल्य

'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने उभरती हुई पूँजीवादी व्यवस्था के अमानवीय पक्षों को उजागर किया है। औद्योगिक विकास और पूँजी का विस्तार मानव-मूल्यों के टकराव के रूप में प्रस्तुत होता है। सूरदास जैसे पात्र पूँजीवादी शक्तियों के सामने खड़े होकर मानवीय गरिमा और नैतिक मूल्यों की रक्षा का प्रतीक बनते हैं।

इस उपन्यास में आर्थिक शोषण केवल आर्थिक लाभ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संस्कृति, परंपरा और मानवीय संबंधों को भी प्रभावित करता है। प्रेमचंद पूँजीवादी शोषण को सामाजिक प्रगति के नाम पर किए गए अन्याय के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे वर्ग-संघर्ष का नैतिक आयाम स्पष्ट होता है।

6.4 'गबन' और 'निर्मला' में मध्यवर्गीय आर्थिक दबाव

'गबन' और 'निर्मला' में प्रेमचंद ने मध्यवर्ग की आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा की समस्या को केंद्र में रखा है। मध्यवर्ग एक ओर सीमित आय और दूसरी ओर सामाजिक अपेक्षाओं के दबाव में जीवन व्यतीत करता है। 'गबन' में आभूषण और सामाजिक प्रदर्शन मध्यवर्गीय मानसिकता का प्रतीक बन जाते हैं, जो आर्थिक संतुलन को बिगाड़ देते हैं।

'निर्मला' में आर्थिक दबाव विवाह-संस्था को प्रभावित करता है, जिससे स्त्री और पुरुष दोनों मानसिक पीड़ा के शिकार होते हैं। इन उपन्यासों में प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि मध्यवर्गीय समाज भी आर्थिक शोषण से अछूता नहीं है, बल्कि वह सामाजिक संरचना के भीतर एक अलग प्रकार के वर्ग-संघर्ष का अनुभव करता है।

इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण बहुस्तरीय रूप में उपस्थित है, जो भारतीय समाज की गहरी सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

7. प्रेमचंद का सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण: आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रेमचंद का सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण भारतीय समाज की वास्तविक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनका वर्ग-दृष्टिकोण किसी एक वैचारिक सिद्धांत से संचालित नहीं है, बल्कि जीवनानुभव और सामाजिक संवेदना से निर्मित है। वे वर्ग-संघर्ष को केवल क्रांतिकारी परिवर्तन के नारे के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक असंतुलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न मानवीय पीड़ा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस कारण प्रेमचंद की दृष्टि को पूर्णतः परिवर्तनकामी कहना कठिन है; वह मूलतः सुधारवादी है, जिसमें सामाजिक चेतना और नैतिक पुनर्संरचना की आकांक्षा निहित है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में आर्थिक शोषण व्यक्ति की नैतिक दुर्बलता का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की संरचनात्मक विफलता के रूप में उभरता है। जमींदारी व्यवस्था, ऋण-प्रथा, पूँजीवादी विस्तार और प्रशासनिक तंत्र उनके साहित्य में शोषण के प्रमुख उपकरण बनते हैं। 'गोदान' का किसान, 'कर्मभूमि' का श्रमिक और 'रंगभूमि' का साधारण जन इसी व्यवस्था के भीतर शोषित होते हैं, जहाँ प्रतिरोध की संभावना सीमित और संघर्ष की पीड़ा व्यापक है।

प्रेमचंद का सुधारवाद नैतिक मूल्यों पर आधारित है। वे मानवीय करुणा, न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व को परिवर्तन का आधार मानते हैं। उनके यहाँ वर्ग-संघर्ष का समाधान हिंसक टकराव में

नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और नैतिक दबाव में निहित है। यही कारण है कि उनके पात्र व्यवस्था के भीतर रहकर संघर्ष करते हैं और अन्याय के प्रति संवेदनशीलता जगाते हैं।

आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो प्रेमचंद की यह सीमित परिवर्तनकामी दृष्टि उनके युग की वैचारिक सीमाओं को दर्शाती है। फिर भी उनकी सामाजिक-आर्थिक दृष्टि की महत्ता इस तथ्य में है कि उन्होंने आर्थिक शोषण को सामाजिक विमर्श के केंद्र में स्थापित किया। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य वर्ग-संघर्ष और आर्थिक असमानता की आलोचना करते हुए सामाजिक सुधार की सशक्त भूमिका निभाता है।

8. समकालीन प्रासंगिकता

प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण की समस्या आज के समाज में भी विभिन्न रूपों में विद्यमान है। यद्यपि सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में परिवर्तन हुए हैं, किंतु वर्गीय असमानता, संसाधनों का असमान वितरण और श्रम के शोषण की प्रवृत्तियाँ अब भी बनी हुई हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद का साहित्य वर्तमान सामाजिक यथार्थ को समझने का एक महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करता है।

किसान संकट आज भी भारतीय समाज की एक गंभीर समस्या है। भूमिहीनता, ऋणग्रस्तता, उत्पादन लागत में वृद्धि और बाज़ार की अनिश्चितताओं ने किसान की स्थिति को और अधिक असुरक्षित बना दिया है। 'गोदान' में चित्रित किसान का संघर्ष आज के किसान जीवन से गहरा साम्य रखता है, जहाँ आर्थिक दबाव आत्मनिर्भरता को बाधित करते हैं और सामाजिक असमानता को स्थायी बनाते हैं।

श्रमिक वर्ग की असुरक्षा भी समकालीन समाज की एक प्रमुख चुनौती है। अस्थायी रोजगार, न्यूनतम मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा का अभाव और पूँजी के वर्चस्व ने श्रमिक को पुनः शोषण की स्थिति में ला खड़ा किया है। 'कर्मभूमि' में श्रम और पूँजी के बीच जो संघर्ष दिखाई देता है, वह आज के औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में नए रूपों में प्रकट हो रहा है।

आर्थिक असमानता का विस्तार मध्यवर्ग को भी प्रभावित कर रहा है। आय और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच बढ़ता अंतर 'गबन' और 'निर्मला' में चित्रित मध्यवर्गीय दबावों की समकालीन अभिव्यक्ति है। इस प्रकार प्रेमचंद द्वारा प्रस्तुत वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण आज भी सामाजिक विमर्श के केंद्र में बने हुए हैं, जो उनके साहित्य की स्थायी प्रासंगिकता को प्रमाणित करते हैं।

9. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के चयनित उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक शोषण भारतीय समाज की संरचनात्मक वास्तविकताओं से गहराई से जुड़े हुए हैं। उनके साहित्य में किसान, श्रमिक और मध्यवर्ग की समस्याएँ व्यक्तिगत दुर्भाग्य के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की विफलताओं के रूप में सामने आती हैं। जमींदारी व्यवस्था, ऋण-प्रथा, पूँजीवादी विस्तार

और सामाजिक असमानता प्रेमचंद के उपन्यासों में शोषण के प्रमुख कारण बनते हैं, जिनके माध्यम से वे वर्गीय विभाजन की वास्तविक प्रकृति को उजागर करते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से प्रेमचंद का महत्व इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने वर्ग-संघर्ष को मानवीय संवेदना और नैतिक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया। उनका सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण सुधारवादी है, जो समाज में चेतना और नैतिक पुनर्संरचना के माध्यम से परिवर्तन की संभावना को रेखांकित करता है। इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यास न केवल अपने समय के सामाजिक यथार्थ के दस्तावेज हैं, बल्कि समकालीन समाज में आर्थिक असमानता और वर्ग-संघर्ष को समझने के लिए भी एक महत्वपूर्ण साहित्यिक और सामाजिक संदर्भ प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रेमचंद. गोदान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1936.
- प्रेमचंद. कर्मभूमि. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1932.
- प्रेमचंद. रंगभूमि. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1925.
- प्रेमचंद. गबन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1931.
- प्रेमचंद. निर्मला. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1927.
- सिंह, नामवर. हिंदी उपन्यास और यथार्थ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1965.
- पाण्डेय, रामविलास. प्रेमचंद और भारतीय समाज. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981.
- पाण्डेय, मैनेजर. साहित्य और समाज. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
- वर्मा, धीरेंद्र. प्रेमचंद का यथार्थवाद. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1978.
- मिश्र, शिवकुमार. प्रेमचंद : सामाजिक यथार्थ के आयाम. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992.
- पाण्डेय, विश्वनाथ प्रसाद. हिंदी उपन्यास : परंपरा और प्रवृत्ति. साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1986.
- शर्मा, रामचंद्र. प्रेमचंद : आलोचना के नए आयाम. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001.
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1957.
- राय, बच्चन सिंह. हिंदी साहित्य का इतिहास. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1984.
- दास, श्यामसुंदर. हिंदी उपन्यास का विकास. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1969.